सत्यांश

कबीर और योग

आजकल योग का संबंध प्रायः शारीरिक व्यायाम और आसन-प्राणायाम के स्थूल रूप तक सिमट गया है। कुछ लोग 'प्रत्याहार', 'धारणा', 'ध्यान' की ओर बढ़ते तो हैं, किंतु अहिंसा, सत्याचरण, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, पवित्रता, संतोष, तप, स्वाध्याय आदि प्राथमिक जरूरतों से दूर रहने के कारण उनकी योग-साधना का रास्ता वैसे ही कभी पूरा नहीं होता, जैसे बिना 'क'-'ख' सीखे वेद-उपनिषद पढ़ना नामुमकिन है। निस्संदेह शारीरिक कार्य-व्यापार, व्यायाम, तेजी से टहलने और धीरे-धीरे दौड़ने से शरीर सुगठित रहता है। स्वस्थ शरीर से ही सर्वांग योग-साधना संभव है। योग-साधना के आठ सोपान हैं -'यम', 'नियम', 'आसन', 'प्राणायाम', 'प्रत्याहार', 'धारणा', 'ध्यान' और 'समाधि।' 'यम' के अंतर्गत हिंसक प्रवृत्ति का परित्याग, सत्य का आचरण, दूसरे की धन-संपत्ति के प्रति लोभ-मोह-लिप्सा का सर्वथा अभाव तथा स्वयं द्वारा भी धन-संग्रह के प्रति अनिच्छा और ब्रह्मचर्य का पालन करना होता है। हर दृष्टि से शुद्धता-पवित्रता, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय और बिना आकांक्षा के ईश्वर में अनुरक्ति पाँच 'नियम' निर्धारित हैं। चौरासी 'आसनों' में 'सिद्धासन', 'पद्मासन', 'उग्रासन' और 'स्वस्तिकासन' मुख्य हैं। 'प्राणायाम' के तीन तरीकों में साँस छोड़ने को 'रेचक', खींचने को 'पूरक' और रोकने को 'कुंभक' कहा जाता है। 'प्रत्याहार' के अंतर्गत इंद्रियाँ पहले के चरणों को पार कर बिल्कुल आत्माधीन होकर इच्छित कार्य-भाव में लीन हो जाती हैं। किसी इष्ट विशेष पर मन को पूर्णतः अधिष्ठित करने की स्थिति 'धारणा' है। 'ध्यान' द्वारा अंतरंग शरीर की नाभि, हृदय या कंठ में मन को अवस्थित किया जाता है, जहाँ की एकाग्रता में बाकी सारे भाव-विचार तिरोहित हो जाते हैं। 'समाधि' के अंतर्गत अंतर्धान की गई वस्तु प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार योग भी मनुष्य जीवन के उन्नयन के लिए बताए गए अन्य मार्गों ज्ञान, कर्म और भक्ति की तरह अकेले ही जीवन के चरम लक्ष्य तक पहुँचाने में सक्षम है, तथापि जीवन की पूर्णता इन चारों के समन्वय में है। इनकी परस्पर पूरकता के कारण किसी एक की सिद्धि दूसरे की भी उपलब्धि बन जाती है। इसी कारण योग का अपना स्वायत्त अनुशासन तो है ही, साथ ही यह अपने तीनों समकक्षों के साथ मिलकर ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग के रूप में अद्भुत सौंदर्य सृजित करता है। इस संकल्पना के पीछे ज्ञान, कर्म, भक्ति में एकदम तल्लीन रहने की भावना सन्निहित है, जैसा कि योग की चरम स्थिति में सारी कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मन, हृदय व शरीर एकाग्रचित्त व एकलय होकर अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करता है। चूँकि 'योगः कर्मसु कौशलम्' यानी कर्म की कुशलता ही योग है, अतः दक्षता, कुशलता, तन्मयता के रूप में योगभाव जीवन के हर क्षेत्र में अपेक्षित है। इसी दक्षता के योगभाव की बदौलत कबीर ज्ञान, कर्म, योग और भक्ति की सहज मौलिक आत्मसिद्धि के प्रमाण बन सके।

कबीर को समाज सुधारक, धर्मचेता, संत साधक, उपदेशक, भक्त और विद्रोही कवि के रूप में जाना जाता है, पर समग्रतः वे क्रांतिचेता योगसाधक थे, हालाँकि उन्होंने पतंजलि प्रवर्तित योगशास्त्र के अनुकूल योग की प्रक्रिया का उल्लेख अत्यल्प किया है। यह उनका प्रयोजन भी नहीं हो सकता, क्योंकि वे योग के अभीप्सित आचार्य नहीं थे। कबीर की भक्ति की तरह उनकी साधना भी सहज है। वस्तुतः भक्ति हो या योग, कबीर इन्हें साधना का विषय कम, भावना का विषय अधिक मानते हैं, इस रूप में सहज भावयोग के प्रणेता ठहरते हैं। योग को योग में जिया, इसलिए उनकी ध्येयनिष्ठता किसी योगी से कम नहीं थी, अन्यथा कबीर कबीर बिल्कुल भी न होते। योगशास्त्र में 'धारणा', 'ध्यान', 'समाधि' को एक शब्द में 'संयम' कहा जाता है, जिसे अपनाने वाले कबीर से बेहतर उदाहरण नहीं मिलता। धर्म व समाज सुधार की अदम्य उत्कंठा, संत का-सा आचरण और बाह्याडंबरों, मिथ्याचारों, अंधविश्वासों, विकृतियों के प्रति तीव्र आक्रोश का स्वर बिना योग-साधना और क्रांतिदर्शिता के संभव नहीं है। क्रांति और योग की वीचि पर खड़े कबीर के विचार-दर्शन को एक शब्द में 'क्रांतियोग' कहा जा सकता है। परिवर्तन की सतत चलने वाली प्रक्रिया को सुदिशा देने के निमित्त क्रांति की आवश्यकता पड़ती है, जिसका लक्ष्य जड़ता, यथास्थितिवाद को जड़-मूल से खत्म कर नया निर्माण करना होता है। जनचेतना व जनजागृति इसके कारगर अस्त्र हैं, यद्यपि इसके अभाव में भी क्रांति घटित होती है, पर वह दिग्भ्रमित होकर अंततः उसी जगह पहुँचती है, जिसके विरोध की नींव पर उसका निर्माण हुआ होता है। कई बार यह खुद प्रतिगामिता व जड़ता का पर्याय बन जाती है। वंचनाओं, कुप्रथाओं, आडंबरों को उनके प्राबल्य-प्रभुत्व के समय पहचानना, उनका पर्दाफाश करना काफी साहस की माँग करता है। कबीर उनके संहार के आगाज से आगे बढ़कर पुख्ता आचार-संहिता भी सुझाते हैं।

ज्ञान का विषय हो या भक्ति का क्षेत्र हो, योग की साधना हो या कर्म का पथ हो, कबीर ने सर्वत्र अपनी खास मौलिक आत्मचेतना या आधुनिक शब्दावली में कहें तो प्रगतिशीलता से आमूलचूल परिवर्तन का संकल्प रखा है। यह अकारण

नहीं है कि परंपरगत रू‍ से हाशिए पर रहे लोगों के अतिरिक्त भारत के कई कम्यूनिस्ट भी उन्हें अपना आदिगुरु मानते हैं। सर्वांग योग व समग्र क्रांति के पुरोधा कबीर ने परंपरागत व प्रचलित योग को लेकर जगह-जगह नाथपंथियों-अवधूतों पर प्रहार किया है -'अवधू जागत नींद न कीजै' आदि-आदि। हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, 'कबीर अवधूतों को ललकारते हैं।' जरा सोचिए, कबीर जागते हुओं को सोने का ढंग धरा देखकर जब व्यंग्य कर सकते हैं तो फिर योग के दौरान दुखियों को ठठाते हुए देखते तो क्या कहते? इन्हीं सब कारणों से 'कागद की लेखी' की बजाय 'आँखिन की देखी' को प्रामाणिक ज्ञान का साधन मानते हैं, असली अध्यात्म को व्यक्त नहीं किया जा सकता -'पारब्रह्म के तेज कूँ कैसा है उनमान।/कहिबे की सोभा नही देख्या ही परवान।।'

अमूमन साधु-संन्यासी समाज-संसार से आँख मूँदकर निरपेक्ष भाव में जीते हैं या फिर धर्म, योग, भक्ति को विकृत-बाजारू रूप देकर उसकी मार्केटिंग करते हैं। कहने की जरूरत नहीं कि सांसारिक मानी जाने वाली सुख-सुविधाओं, ऐश्वर्य-समृद्धि के साम्राज्य को आजकल धर्म, अध्यात्म, योग का धंधा करने वालों ने ज्यादा धारण कर रखा है। कबीर ऐसे धर्म, योग, भक्ति के नाटक को पाखंडपूर्ण और धोखा मानते हैं। उनका पूरा जोर सीधे सहज रास्ते से मनुष्य ही नहीं, प्राणिमात्र के परित्राण पर है। इसलिए न तो धर्म के विकृत होते रूप को स्वीकार किया और समाज-संसार को मायावी मानते हुए भी न ही उससे आँखें बंद कीं। निर्द्वंद्व चेता के रूप में धर्म के सही स्वरूप को साहस के साथ लोगों के सामने रखा, तो वहीं सामाजिक समस्याओं के प्रति जनचेतना जागृत की। इस प्रकार उनका समाजबोध एवं अध्यात्मबोध दोनों व्यापक यथार्थबोध और गहरे व्याहारिक बोध से संयुक्त था। अपने समय की मानवीय सांस्कृतिक भावधारा में 'गेहूँ में घुन' की तरह व्याप्त दुष्प्रवृत्तियों को चुन-चुन कर नष्ट करने का बीड़ा उठाया। उनके समय में ब्राह्मणवादी संस्कृति ही हिंदू संस्कृति का पर्याय हो गई थी; तरह-तरह के मिथ्याचार, पाखंड, आडंबर घुस गए थे, जो अंदर ही अंदर पूरी धर्म-संस्कृति को खोखला करते जा रहे थे, तब कबीर ने कहा -'पंडित बात बदंते झूठा।' कामी, क्रोधी, लोभी, मर्यादाहीन, श्रुति बेचने वाले पंडितों का दंभ कबीर के गले नहीं रहा था -'ओ ब्राह्मण ब्राह्मणी का जाया, और राह ते काहे न आया।' यहीं इस बात की भी सार्थकता झलकती है कि 'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते' अर्थात् सब लोग जन्म से शूद्र पैदा लेते हैं, पर संस्कार व कर्म से ही ब्राह्मण आदि बनते हैं। कबीर का भी यही विचार है -'एक नूंर तैं सब जग कीया, कौन भले कौन मंदे।' आचरण की शुद्धता से भक्ति का व्यापक क्षेत्र सबके लिए समान रूप से खुलता है -'जाति पाति पूछै नहीं कोई/हरि का भजै सो हरि का होई।' भक्ति को ऐच्छिक-वैकल्पिक न मानकर सबके लिए आवश्यक बताया -'जब तक भाव भगति नहिं करिहौ, तब तक भव सागर क्यूँ तरिहौ।' इस क्रम में भगवद्भक्ति से परंपरागत रूप में दूर रहे जनों को उत्प्रेरित किया, वहीं पहले नजदीक रहते हुए भी दूर चले गए ब्राह्मणों को भी नाम-स्मरण न करने के लिए फटकार लगायी -'पांडे कौन कुमति तोहि लागी, तू राम न जपहिं अभागी' और जोर से अजान करने पर मुल्लाओं से पूछा -'क्या बहरा हुआ खुदाय?' वास्तव में कबीर ने सभी वर्णों, संप्रदायों, पंथों को एकेश्वरवाद के प्रति जागरूक करने का सत्कार्य किया।

कबीर ने सामंतवाद, भोग-विलास, अंधविश्वास व कुरूढ़ियों से विषाक्त अंधकारमय वातावरण में सामान्य जनों को ग्रास बनता देखकर उपेक्षितों, दमितों में नवजीवन व ऊर्जस्विता का संचार किया। कहीं ईश्वर की शक्ति के रूप में, तो कहीं आदर, मान, जप, तप, योग के रूप में भी माया का उल्लेख किया, तथापि संपूर्णतः कंचन यानी धन तथा कामिनी यानी स्त्री के रूप में माया को बंधनकारक कहा। 'जोरू जूठन जगत की, भले बुरे का बीच' कहकर जीव को केवल उन्मादी भोग-विलास में प्रवृत्त कर दिग्भ्रमित करने वाले कामुक रूपों की भर्त्सना की। उनकी दृष्टि में अज्ञान और अभक्ति ही अविद्या और माया है। प्रेम के बारे में कबीर के सुदृढ़ विचार काफी आधुनिक और क्रांतिकारी हैं -'ढाई आखर प्रेम का, पढै सो पंडित होय।' ईश्वर के प्रति समर्पण भाव में भी कबीर का सानी नहीं, जिसमें वे अपने को 'राम का कुत्ता' तक कह देते हैं -'कबीर कुत्ता राम का, मोतिया मेरा नाउ।' इसकी पराकाष्ठा में ईश्वर को अज्ञानी कहकर उसमें दोष ढूँढ़ने लगते हैं -'हमहिं कुसेबग कि तुम्हहि अग्याना। दुहूँ मै दोष कहौ किन रामा।' हिंसा व बलि जैसी धर्मविरोधी कुरीतियों की घोर निंदा करते हुए बलि देने वाले शाक्तों के बनिस्बत वैष्णवों को भला माना -'वैष्णव की छपरी भली, ना साकत बड़ गाँव।' इस समय भी गायों की हत्या और तस्करी को लेकर तो बवाल होता रहता है, पर बाकी जीव-जंतुओं के मांस भक्षण के मामले में गोरक्षक भी पीछे नहीं रहते। कबीर ने चेताया है -'बकरी पाती खात है ताकी काढ़ी खाल।/जो नर बकरी खात है उनका कौन हवाल।' आधुनिक जीवनमूल्यों की स्थापना का स्वर कबीरदास की अनुपम देन है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, 'कबीर ने अपनी झाड़-फटकार के द्वारा हिन्दुओं-मुसलमानों का कट्टरपन दूर करने का प्रयास किया, यद्यपि उनमें आक्रोश इतना है कि प्रभाव सीमित कहा जाएगा।' दूसरी ओर, उनके लगभग समकालीन रहे पीपा ने कहा था -'जो कलि माँझ कबीर न होते।/तौ तै बेद अरु कलि मिलके भक्ति रसातल देते।' वास्तव में कबीर अपने समय के ही नहीं, इस युग के प्रकाशस्तंभ हैं।